Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
July to September 2025, E-Journal, Vol. I, Issue LI (51), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

प्राचीन भारतीय इतिहास एवं साहित्य में लोकतंत्र

डॉ. आशुतोष कुमार मिश्रा*

* सहायक प्राध्यापक, सूरज ज्ञान महाविद्यालय, कोंच (उ. प्र.) भारत

1. आदिकाल में लोकतंत्र – प्राचीन भारत में शासन व्यवस्था का स्वरूप एवं शासनसत्ता किसी परम्परागत एकतंत्रीय रास्ते पर नहीं चली बल्कि उसने अपना सफर भूगोल, अर्थव्यवस्था, सामाजिक सांस्कृतिक एवं धार्मिक समकालीन परिस्थितियों को अपने दामन में संयोजे अपना रंग रूप बदलती रही हैं। डॉ. बेनी प्रसाद लिखते हैं कि हिन्दू राजनैतिक संस्थाओं की प्रकृति एवं कार्य यहाँ के भूगोल जातीय विशेषतायें, सामाजिक संगठन एवं आर्थिक परिस्थितियों से बहुत कुछ प्रभावित थे।

जनसंख्या की बिखरी हुई बसावट राज्य के आकार की विविधता, संचार साधनों के अभाव एवं जातीय वर्गीय सामाजिक व्यवस्था के व्यवहार के कारण आदिकालीन भारत में प्रजातंत्र की भूमि तैयार न हो सकी। जाति एवं वर्गीय व्यवस्था की असमानता ने प्रजातांत्रिक मूल्यों को अंकुरित नहीं होने दिया। डॉ. बेनी प्रसाद के मतानुसार जाति व्यवस्था ने कुलीनतंत्र को भी सरकार के एक रूप का स्तर प्राप्त न करने दिया अर्थात प्रस्तुत काल की आर्थिक सामाजिक एवं भौगोलिक परिस्थितियाँ ने प्रजातंत्र एवं कुलीनतंत्र के विपरीत राजतंत्र को अपनी शासन व्यवस्था का आधार बनाया।

आदिकाल से राज्य की उत्पत्ति तक समाज दो विभिन्न अवस्थाओं से होकर गुजरा जिनकी अराजक एवं वैराज्य नाम दिया गया था। एस.ए. डॉगे के मतानुसार '**अपनी इस कौटुम्बिक अवस्था में मनुष्य सुखी था, लेकिन संचार साधनों के अभाव एवं जातीय वर्गीय व्यवस्था के कारण लोकतंत्र की पृष्ठभूमि तैयार न हो सकी, धर्म ने बिना सजा एवं राज्य के दीर्घकाल तक समाज की रक्षा की।**'[1]

2. वैदिक काल में लोकतंत्र – वैदिक काल को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है एक प्रारंभिक वैदिककाल जिसमें ऋग्वेद की रचना का उल्लेख है और दूसरा उत्तर वैदिक काल जिसमें शेष तीनों वेद, तथा यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद समेत ब्राह्मण ग्रंथ, अरण्यक ग्रन्थ, उपनिषद ग्रन्थ सूत्र ग्रन्थ, वेदांग और उपवेद आदि की रचना हुई। वैदिक साहित्य एक ऐसा स्त्रोत है, जिसमें यह प्रमाणित होता है कि भारत में अति प्राचीनकाल में राजनीतिक चेतना विधमान थी भारत में आर्यों का आगमन 2000 ई.पू. खैबर दर्रे के द्वारा मध्य एशिया में केस्पियन समुद्र झील के निकट के प्रदेश से हुआ। आरम्भ में आर्यों का अधिकार उत्तरी पश्चिमी भारत पर हुआ जिसे उन्होनें ब्रम्हवर्त के नाम से पुकारा सामाजिक जीवन की इकाई पितृ कुल था। ऋग्वेद कालीन भारत में सामाजिक संगठन का विकास क्रमिक रूप से हुआ। ग्रहों (परिवारों) से कुल बने, उसके बाद ग्राम बने ग्रामों के समूहों से विश बने उसके बाद जनों का निर्माण हुआ, अंत में राष्ट्र की उत्पत्ति हुई। परिवार का मुखिया पुरूष होता था, कुल का कुलपति, ग्राम का ग्रामीण और विश का विशपति विश से बड़ा समूह जन कहलाता था। डॉ. बन्धोपाध्याय के मतानुसार विश एक प्रकार का सैनिक संगठन था, विश अनेक ग्रामों का समूह होता था प्रत्येक ग्राम का मुखिया ग्रामीण कहलाता था, ग्राम आर्यो का सबसे छोटा सामाजिक व राजनीतिक समुदाय था, और जन सबसे बड़ा समुदाय था ऋग्वैदिक कालीन शासन व्यवस्था के रूप में राजतंत्र के प्रमाण मिलते है। डॉ. हरिशचन्द्र शर्मा लिखते हैं कि **'इस समय सामंतवादी प्रवृतियाँ उभरने लगी थी। यहाँ राजन शब्द का प्रयोग कुलीन पुरूष के अर्थ में किया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि राजा के चारों ओर कुलीन परिवार के लोग रहते थे, जिनका सामाजिक स्तर प्राय: एक जैसा ही रहा होगा।**'[2] इस काल में साम्राज्य एवं सम्राट शब्द का उपयोग इस तथ्य को प्रमाणित करते है। डॉ. जायसवाल लिखते है कि– **'प्रारंभिक वैदिक साहित्य में केवल राजतन्त्र का ही उल्लेख किया गया है यह इसलिये हुआ होगा क्यों कि वैदिक युग के आरम्भ में केवल राजाओं के द्वारा ही शासन हुआ करता था। वैदिक युग के बाद यह शासन व्यवस्था छोड़ दी गई तथा भिन्न–भिन्न स्थानों में लोकतंत्रात्मक शासन व्यवस्था को अपनाया गया।**'[3]

उत्तर वैदिक कालीन, साहित्य में लोकतन्त्रीय शासन के पुख्ता प्रमाण प्रस्तुत करता है, यद्यपि वैदिककाल में प्रचलित शासन पद्धति राजतंत्र थी, फिर भी कुछ लेखकों के मतानुसार उस काल के अंत में पूर्व गणतंत्रीय शासन भी कुछ भागों में स्थापित हो गये थे ड्रेकमीयर के अनुसार सम्पूर्ण भारत राजतंत्रीन था। आधुनिक दिल्ली और गंगा के क्षेत्रों में राजतंत्रीय संस्थायें थी, परन्तु ऐतरेय ब्राह्मण में इस बात का संकेत मिलता है कि उत्तरी भारत के महत्वपूर्ण भाग में लोकतंत्रीय शासन था। जायसवाल ने इस विषय में लिखा है कि – **'भारत में गणतंत्रीय पद्धति राजतंत्र के बहुत बाद और पूर्व वैदिक के बाद आई। इसका उल्लेख उत्तर वैदिक कालीन साहित्य में मिलता है ऋग्वेद के ब्राह्मण ऐतरेय में, यजुर्वेद में और उसके ब्राह्मण तैतिरेय में।**'[4]

वैदिक साहित्य में राजा के निर्वाचन का उल्लेख मिलता, अथर्ववेद के एक मंत्र यथा–

'त्वा विशो वृणता, राज्याय त्वामिम: प्रदिश:
पंचदेवी वर्मन राष्ट्रस्य कुकुदि श्रयस्व
ततोन उग्रा विभ जा वसूनि'[5]

अर्थात प्रजा (विश) राज्य के लिये तुम्हे वरण करती है। सब दिशाओं

के लोग तुम्हारे वरण करते है, तुम राष्ट्र रूपी शरीर के सर्वोच्च स्थान पर आसीन हो और वहाँ रहते हुये उग्र शासन के समान रूप में सम्पत्ति का विभाजन करें।

उपरोक्त मंत्र से स्पष्ट है कि प्रजा जनता या विश राजा का वरण करती थी, और सब लोगों द्वारा स्वीकार किये जाने के पश्चात ही राजा के निर्वाचन पर पक्की मोहर लगती थी। राजा अपने पद पर तभी तक रह सकता था, जब तक उसे अपनी प्रजा का विश्वास प्राप्त होता था। इसलिए अथर्ववेद में कहा गया है कि–

'विशवसत्ता सर्वा का छन्तु मान्वद्राष्ट्रम'[6] राजा का निर्वाचन ही इस युग में लोकतंत्रीय पद्धति का सूत्रपात माना जा सकता है। अथर्ववेद के अनुसार राज्य के शासन कार्य में सहायता देने के लिये गण थे। गण शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में 40 बार अथर्ववेद में एक बार और ब्राह्मण के कई स्थलों में प्रयुक्त हुआ। गण का मुख्य अर्थ है, समूह राज्य अथवा बहुत से लोगों के द्वारा होने वाला शासन गण शब्द से संसदीय का बोध होता है। गण जनता का एक ऐसा समूह या जो सभा के रूप में कार्यकरता था 'गण' जैसी व्यवस्था में सभा और समिति नामक दो संस्थायें थी।

'सभा च मा समितिश्चवा प्रजापते र्दुहिरी संविदाने।
येना संगच्छा उपभा स शिक्षा ज्वात: वदानि पितर: संगतेषु'[7]

उपरोक्त मंत्र से स्पष्ट है कि सभा और समिति राजा निर्मित नहीं बल्कि ईश्वरकृत राजनीतिक संस्थायें थी जो राजा को समुचित परामर्श देनें का कार्य करती थी, इन्हीं संस्थाओं का आधुनिक संसद प्राचीन भारतीय संसद कहा जा सकता है। लोकतंत्र में वयोवृद्धों के विचारों को शासन में यथोचित स्थान था उनकी सलाह मान्यता रखती थी, क्योंकि उसमें जीवनभर का अनुभव जुड़ा रहता था तथा उनसे राजनैतिक सुरक्षा की अपेक्षा की जाती थी।

समिति भी सम्पूर्ण विश की प्रतिनिधि संस्था थी जो वैदिक कालीन राजा का वरण, पदच्युति, एवं पुर्नवरण करती थी। विश से तात्पर्य सम्पूर्ण वयस्क नागरिकों से है। समिति में सम्पूर्ण वयस्क नागरिक एकत्रित होते थे जिसमें राजा भी सम्मिलित होता था, सभा और समिति के अतिरिक्त तीसरी और चौथी संस्था क्रमश: विदर्थ और सेना थी।

विदर्थ– यज्ञ यज्ञादि विषयक शुद्ध धार्मिक कृत्य करती थी, जबकि सेना का कार्य देश की रक्षा करना था।

डॉ. जायसवाल के मतानुसार **'राज्य की उत्पत्ति जनतंत्र के रूप में ही हुई वैदिक काल में जनतंत्र पूर्ण रूप से विकसित हो चुके थे कालान्तर में इसमें कुछ दोष उत्पन्न होने के कारण शासन का स्वरूप लोकतंत्र की ओर झुका।'**[8]

वैदिक युग में इस बात पर जोर दिया गया था कि सभा और समिति के सदस्य परस्पर सहयोग से कार्य करें उनके मन तथा वाणी एक हो तथा उनके विचार विमर्श भी समान हो एवं उनके द्वारा निर्धारित नीति भी एक ही हो अर्थात उनमें परस्पर सामूहिकता एवं एक रूपता का अधिवास हो।

अत: स्पष्ट है कि वैदिक काल में ही विचारकों ने मान लिया था कि राष्ट्र में सबका एक मत होना आवश्यक है और इसे महत्व भी इसलिये दिया जाता था ताकि राष्ट्र कमजोर न हो, क्योंकि सभा और समिति जैसी लोकतांत्रिक संस्थाओं में सम्मिलित लोगों के मन चित्त एवं हृदय की पारस्परिक भिन्नता अन्तत: राष्ट्र के लिये घातक हो सकती थी।

3. महाकाव्य काल में लोकतंत्र – वैदिक कालीन आर्यों के बाद के इतिहास के बारे में प्राचीन भारत के दोनो महाकाव्यों रामायण और महाभारत से काफी जानकारी प्राप्त होती है। इन महाकाव्यों ने मानवीय जीवन के लिये जिन उदात सिद्धान्तों और दृष्टांतों को प्रस्तुत किया है, उनके कारण ये महाकाव्य भारतीय जनमानस के प्रकाश स्तम्भ बन गये है। ऐतिहासिक ग्रन्थ होने के साथ–साथ ये भारत वर्ष के धार्मिक ग्रन्थ भी है महर्षि बाल्मीकि ने रामायण की और वेद व्यास ने महाभारत की रचना की, जबकि तुलसीदास जी ने रामचरित मानस की रचना की है।

महर्षि बाल्मीकि एवं तुलसी दोनों ही राजतंत्र में विश्वास करते हैं, यही कारण है कि, रामायण का झुकाव राजतंत्रात्मक शासन व्यवस्था की ओर ज्यादा दिखाई देता है। रामायण के प्रमुख राज्यों मिथिला, अयोध्या, किष्किन्धा और लंका में राजतंत्रात्मक शासन व्यवस्था को देखा जा सकता है। यद्यपि रामायण में यत्र–तत्र गण शब्द का उल्लेख मिलता है परन्तु स्पष्टत: यह शब्द लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था के लिये प्रयुक्त हुआ है या नहीं यह स्वत: सिद्ध नहीं है। लेकिन रामायण में मंत्री परिषद या लोकतंत्रीय शासन व्यवस्था के अन्य अंग दिखाई देते है, जिनके आधार पर लोकतंत्रीय शासन व्यवस्था को अंशत: स्वीकार किया जा सकता है।

प्राचीन भारतीय शासन पद्धति और राजनीतिक विचारों के अध्ययन हेतु महाभारत एक महत्वपूर्ण स्त्रोत के रूप में परिलक्षित किया जा सकता है। इसके शांति पर्व में जहाँ दण्ड नीति, राजशास्त्र, राजधर्म, शासन पद्धति, मंत्री और कर व्यवस्था आदि के विषय में विचार उल्लेखित है, तो वहीं इसके सभापर्व एवं आदि पर्व में क्रमश: सभा की रचना आपातकालीन जैसे सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है।

डॉ. हरिशचन्द्र शर्मा जहाँ महाभारतकालीन शासन व्यवस्था को सामंतवाद और कुलीनतंत्र से प्रभावित राजतंत्रात्मक शासन व्यवस्था के रूप में स्वीकार करते है वहीं दूसरी तरफ डॉ. उर्मिला मिश्रा इस काल में चार प्रकार के जनतंत्रीय शासन तथा राज्य, परमेष्ठीय राजा, गणराज्य एवं संघराज्य का अस्तित्व स्वीकार करती है।

महाभारत के शांतिपर्व में गणसंज्ञक शासन का उल्लेख आता है, जो उस समय प्रचलित थे भारत का उत्तरी–पश्चिमी भाग उस काल में इस प्रकार के राज्यों से परिपूर्ण या महाभारत में मुख्य रूप से 05 गणों का उल्लेख मिलता है। अन्धक, वृष्णि, यादव, कुकुर और भोज जिन्होंने एक संघ के अंतर्गत अपने आपको संगठित किया था। शांतिपर्व के अध्याय 107 के अनुसार यहाँ गण से तात्पर्य सम्पूर्ण राजनीतिक समुदाय अथवा संसद से है, केवल शासक समूह से नहीं।

महाभारत के शांति पर्व में नारद और कृष्ण का सम्वाद गणराज्यों के संबंध में दिया हुआ है, जिसके अध्ययन उपरान्त यह ज्ञात होता है कि गणराज्यों में राजा नहीं होता था, और यदि होता भी था तो वह उस रूप में न होता था जिस रूप में राजतंत्रात्मक राज्यों में होता था। इस सम्वाद में इस प्रकार का वर्णन प्राप्त होता था कि अन्धक–वृष्णि गण राज्य के अध्यक्ष पद की प्राप्ति के लिये उग्र संघर्ष हो रहा था, इस गणराज्य में कई राजनैतिक दल थे, जिनमें प्रत्येक दल अपने राजनैतिक नेता को राज्य का अध्ययन बनाने के लिये प्रयत्नशील था। इस प्रकार के वर्णन के आधार पर यह विदित होता है कि इन गणराज्यों में अध्यक्ष पद पैतृक अधिकार पर आधारित नहीं था, अध्यक्ष पद की पूर्ति निर्वाचन पद्धति से होती थी, और निर्वाचन प्रवृति लोकतन्त्रीय शासन व्यवस्था का महत्वपूर्ण माना है।

इसी राज्य में सुधर्मा नामक सार्वजनिक सभा का भी उल्लेख मिलता है

जिसमें जनतंत्रात्मक राज्य के सिद्धांतो के अनुसार ही कार्य संचालन होता था।

उपरोक्त वर्णन से यह विदित होता है कि रामायण और महाभारत कालीन गणराज्य अपने नाम के वास्तविक लोकतांत्रिक राज्य थे जिनमें आधुनिक लोकतंत्रवाद के लगभग समस्त तत्व विधमान थे। डॉ. श्रीमती उर्मिला मिश्रा लिखती है कि :-

उपरोक्त सभी जनतंत्रीय राज्यों में वे सभी गुण विधमान थे जिन्हें आज लोकतंत्र के लिये आवश्यक माना जाता है।

4. जैन धर्म एवं बौद्ध धर्म के काल में लोकतंत्र – इस काल में दो नये धर्मों जैन धर्म और बौद्ध धर्म का उदय हुआ उसके बाद भारत पर एलेक्जेन्डर का आक्रमण हुआ। जैन धर्म, बौद्ध धर्म का पूर्ववर्ती है, महावीर और बौद्ध समकालीन थे।

जैन ग्रन्थ आंचरंग सूत्र में 'दोरिज्याणी' एवं 'गणरायाणी' शब्दों का उल्लेख मिलता है, पहले शब्द का प्रयोग उन राज्यों के लिये किया जाता था जिनमें दो शासक शासन करते थे और दूसरे शब्द का प्रयोग उन राज्यों के लिये किया जाता था जिनमें गण या समूह का शासन होता था। डॉ. जायसवाल के कथानुसार ये शासन प्रणाली के व्याख्यात्मक शब्द है इससे स्पष्ट है कि महावीर के शासनकाल में गणतंत्रात्मक शासन व्यवस्था का प्रचलन था।

भारतीय लोकतंत्र के इतिहास में बौद्ध धर्म एवं बौद्ध साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान है। ईसा से 600 वर्ष पूर्व बुद्ध के समय में भी भारत में लोकतांत्रिक राज्यों का उल्लेख मिलता है, जिनमें प्रमुख थे- शाक्य, लिच्छवि, विदेह, मल्ल, कोलि, मोयि, बुली, मर्ग। मल्लों का संघ या पंचायती राज आधुनिक गोरखपुर जिले में था।

पाणिनि और कौटिल्य ने भी ब्रजियों का उल्लेख किया है। जातक की एक कथा में लिच्छिवियों की राजव्यवस्था का वर्णन किया गया है। जिसमें लिच्छ शासकों को गणशासक अर्थात लोकतंत्रीय शासक कहा गया है। लिच्छवी कुल 7707 की संख्या में ये सभी मिलकर अपना राजा, उपराजा और सेनापति चुनते थे। एक बौद्ध ग्रन्थ में लिखा हुआ है कि उन लोगो (वैशाली) में सभी लोग अपने आपको राजा समझते है सब कहते है कि मैं राजा हूँ, मैं राजा हूँ, कोई किसी का अनुगामी नहीं होता। इससे स्पष्ट है कि राज सभाओं में सभी लोगो को बोलने तथा मत देने का अधिकार प्राय: समान रूप से था। और प्रत्येक व्यक्ति इस बात के लिये लालायित रहता था कि अबकी बार मैं राजा बन जाऊँ।

श्रीरामचन्द्र वर्मा लिखते हैं कि **'महात्मा बुद्ध का जन्म ऐसे लोगो में हुआ था जो लोकतंत्र का भोग करते थे, उनके चारों ओर पड़ोस में संघ ही थे, और वे उन्हीं में पले थे। उन्होनें जिस वर्ग या समाज की स्थापना की थी उसका नाम भिक्षु संध अथवा भिक्षुओं का लोकतंत्र रखा गया था।'**

डॉ. परमात्माशरण उपाध्याय लिखते हैं कि **'बुद्ध ने अपने ही जीवनकाल में जीवन तथा प्रक्रिया के नियमों को विहित कर दिया था। प्रत्येक नियम से अपना लोकतंत्रीय स्वरूप प्रकट होता है। सभा में बैठने के क्रम को पहले से ही कोई ज्येष्ठ भिक्षु नियत करता था। गणपूर्ति के अभाव में कोई सभा वैध न होती थी। संघ की सभा में निर्णीत होने वाले प्रश्नों को औपचारिक रूप से प्रस्तुत किया जाता था, और वाद-विवाद के लिये साधारण नियम थे।'**[9]

डॉ. के. पी. जायसवाल के अनुसार **'बौद्ध संघो की प्रणाली एवं संगठन तत्कालीन जनतंत्रीय राज्यों में प्रचलित प्रणाली पर ही आधारित थी इनमें अनेक परिभाषित शब्दो को इनकी व्याख्या किये बिना ही ले लिया गया था। साथ ही यह प्रणाली इतनी वैज्ञानिक थी कि इसके बनने में शताब्दियों का अनुभव मिलना आवश्यक था।'**[10]

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि बौद्धकालीन शासन व्यवस्थाओं पर समकालीन आचार्यो मनीषियों एवं परिस्थितयों का स्पष्ट प्रभाव पड़ा होगा। यही कारण है कि उन्होनें अपना धार्मिक संघ स्थापित करने में राजनीतिक संघ का नारा और साथ ही संघतण पर रचना प्रणाली ग्रहण की। इस प्रकार बौद्ध भूमि पर भी लोकतंत्र पल्लवित एवं पोषित हुआ।

5. पाणिनी में लोकतंत्र – समकालीन हिन्दू लोकतंत्र के निश्चित एवं तर्क संगत अध्ययन के लिये पाणिनी को विश्लेषित करना नितान्त आवश्यक है। पाणिनी के अभाव में हमारा ज्ञान अधूरा है। पाणिनी का समय ई. पू. 500 के लगभग माना जाता है। उन्होनें संघ शब्द की वैज्ञानिक व्याख्या कर समकालीन लोगों को लोकतंत्र के प्रति दृढ आस्था को प्रकट किया है समिति के अनुसार संघ एक परिभाषिक शब्द हैं। जिससे राजनीतिक संघ का अभिप्राय सूचित होता है। अथवा जैसा कि स्वयं उसने कहा है वह गण या प्रजातन्त्र है।

पाणिनी संघो को आयुधजीवी एवं कौटिल्य शास्त्रीय जीवी नाम से संबोधित करते थे कुछ आयुधजीवी अर्थात संघ या लोकतन्त्र. इस प्रकार है - वृक, दामिनि, कोडोपरथ, दांडकी, कौष जालमानि, ब्रह्मगुप्त, यौधेय, जानकी, पर्व, भद्रा, व्रजि, राजन्य, अंधक-वृष्णी, महाराज आर्ग, आदि, इस प्रकार पाणिनी के विश्लेषण में संघ और गण एक ही अर्थ के परिचायक माने गये, और लोकतंत्र के स्वरूप में दृष्टव्य हुये।

6. कौटिल्य के अर्थशास्त्र में लोकतंत्र – प्राचीन भारतीय राजनीति के प्रमुख विचारक कौटिल्य ने सरकार के स्वरूप, संगठन एवं कार्यो के संबंध में बहुत कम कहा है, अर्थशास्त्र के समय तक भारत में राजनीतिक चेतना विकसित हो चुकी थी कि सामान्य जनता सरकार एवं राज्य का महल समझ सके, सरकार को अन्य सभी संस्थाओं से उच्च माना गया था। सैद्धांतिक दृष्टि से समस्त सामाजिक संगठनो को सरकारी यंत्र पर आश्रित बताया गया।

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में संघों को दो रूपों में विभाजन किया है, पहले वे जिनके शासक राजा की उपाधि धारण करे थे ऐसे संघो में लिच्छिविक, वृजिक, मल्लक, मद्रक, कुकु, कुरू, पांचाल आदि और दूसरे वे जिनमें शासकों के लिये राजा की उपाधि धारण करने का कोई नियम नहीं था वे अपने शासकों को राजा की उपाधि धारण नहीं कर देते थे ऐसे संघो में कांभोज, सुराष्ट्र, क्षत्रिय, श्रेणी आदि थे।

कौटिल्य राजा को धर्मप्रवर्तक मानता था, उनके मत राजा को विद्धान आत्मनियंत्रित सक्रिय, बहादुर एवं शाही मंत्रियों द्धारा सुसेवित होना चाहिए राजा के व्यक्तित्व पर बहुत कुछ निर्भर करता था, इसलिए उसके उचित प्रशिक्षण पर पर्याप्त ध्यान दिया गया।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में सरकार के संचालन लिये जिन सहायकों की आवश्यकता होती थी, उनके चयन एवं नियुक्ति को भी महत्वपूर्ण माना गया है, अर्थशास्त्र में योग्यता को इन नियुक्तियों का मूल आधार माना गया है।

कौटिल्य के मतानुसार- अपनी प्रजा के हित में कार्य करना ही राजा का

वृत है सबके साथ समानता का व्यवहार ही उसका उच्चदान है इस प्रकार कौटिल्य के अर्थशास्त्र से स्पष्ट होता है कि तत्समय संघीय गणराज्य लोकतंत्रीय पद्धति से संचालित होते थे, और लोकतंत्रीय शासन प्रकृति प्रचलन में थी।

7. यूनानी चिन्तन एवं साहित्य में भारतीय लोकतंत्र – जिस समय सिकन्दर ने भारत वर्ष पर आक्रमण किया था उस समय अनेक लोकतंत्रीय शासन पद्धति वाले राज्य इस देश में विधमान थे। उस समय के इतिहासकारों ने तत्समय के लोकतंत्र को स्वाधीन, स्वराज्य भोगी, और स्वतंत्र आदि शब्दो से संबोधित किया है, जिससे उनका अभिप्राय लोकतन्त्र से ही था। स्ट्रेबों के लेखानुसार कतई जाति में जो सबसे सुन्दर होता था वही राजा चुना जाता था। अस्ट्रेस्तई, सौभूति, छद्क, मालब, शिवि, अगि सनेई, अस्पष्ट, मसिकनि, द्दचमनोई, पटल आदि लोकतांत्रिक राज्यों का उल्लेख उन्होनें किया है। यूनानी जगत का प्रथम यात्री जिसने चन्द्रगुप्त मौर्य के शासनकाल में न केवल भारतीय वसुन्धरा पर कदम रखा, बल्कि भारतीय सभ्यता और संस्कृति के बीच एक लम्बा समय वहीं व्यतीत किया उसने स्पष्ट किया है कि वैदिक युग के उपरान्त भिन्न-भिन्न स्थानों में लोकतंत्रीय शासन की स्थापना हो गई थी। उन्होनें शासन प्रणाली के स्वरूप के विचार से देश को दो भागों में विभाजित किया, एक वह जहाँ एक राजस्व प्रणाली थी, और दूसरा वह जिसमें प्रजातंत्रीय शासन प्रणाली थी। सिद्धान्त रूप में तत्समय राजा सर्वशक्ति सम्पन्न होता था लेकिन सामूहिक मंत्री परिषद एवं प्राचीन परम्पराओं ने सदैव मौर्य शासकों की निरंकुशता पर अंकुश लगाये रखा।

यूनानी लेखकों के मतानुसार प्रस्तुत लोकतंत्रीय राज्यों में राजा या सभापति का अस्तित्व जो वंशानुगत न होकर निर्वाचित होता था। शासनाधिकार वृद्धों अथवा ज्येष्ठों की एक सभा जिसे पहल कहा जाता था उसमें निहित होता था। उन्होनें गण शब्द के प्रचलन को लोकतन्त्र का ही अभिप्राय बताया।

स्ट्रेबो के अनुसार– मुचीकर्ण में दास प्रथा मान्य नहीं थी, राज्यों में सभापति का अस्तित्व होता था जो निर्वाचित होता था, शासनाधिकार वृद्धों की सभा पहल में निहित थे। समस्त लोकतांत्रिक राज्यों में सभात्मक प्रणाली प्रचलित थी।

श्री रामचन्द्र वर्मा लिखते है कि– 'इससे प्रमाणित होता है कि ये सब शासन प्रणालियां उन छिन्न-भिन्न लोगों की विशिष्ट परिस्थितियों तथा आवश्यकताओं के अनुकूल और उपयुक्त थी जो उन राज्यों में रहते थे। उदाहरणार्थ सम्बन्धों के लोकतंत्र में एक द्वितीय मण्डल भी था जिसमें निर्वाचित वृद्ध या ज्येष्ठ लोग हुआ करते थे। ये लोग अपने सेनापति का भी निर्वाचन कर लिया करते थे। समाज के प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्यक्ष रूप से मत देने का अधिकार था और यूनानी लोग इसी प्रकार की शासन प्रणाली की लोकतंत्र कहते थे।'[11]

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वैदिककाल से लेकर 5वी ईसवी शताब्दी तक भारत में लोकतांत्रिक शासन पद्धति को अपनाया गया। गण एवं संघ शब्दो के प्रचलन एवं संबंधित शब्दों के वास्तविक स्वरूप की जानकारी से संबंधित परवर्ती वैदिक साहित्य, ऋग्वेद के ब्राह्मण भाग, ऐतरेय और यजुर्वेद, और ब्राह्मण तैतिरीय, महाभारत का शांति पर्व, जैनधर्म का आचरंग सूत्र, बौद्ध साहित्य, पाणिनी, एवं कौटिल्य समेत मेगस्थनीज की दंत कथाओं से स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय शासन व्यवस्था में शासन का स्वरूप लोकतन्त्रीय था।

प्राचीन भारतीय प्रजातन्त्रों की सूची

क्र.	नाम	क्र.	नाम
1	अग्रश्रेणी	41	मर्ग
2	अंधक	42	पांचाल
3	अलब्छ	43	पितिनिक
4	अंध्र	44	पुलिन्द
5	अरट अरिष्ट	45	कठ
6	अवंदी	46	करपट
7	क्षद्रक	47	काक
8	कौइयरथ	48	कांबोज
9	गंधार	49	कुकुर
10	गोपालव	50	कुणिन्द
11	म्लौचुकापनक	51	मल्ल
12	आमीर	52	महाराज
13	आर्जुनामन	53	मालव
14	औदुंबर	54	मुचुकर्ण
15	उत्तरकुरू	55	मौडिनुकाय
16	उत्तरमद	56	कुरू
17	उत्सव संकेत	57	केरलपुरत
18	पहल	58	कोलिम
19	पश्र्व	59	कौडिमरथ
20	शाचिंडिनिकाय	60	कौष्हिकि
21	सुराष्ट्र	61	भोज
22	सौभूति	62	भद्र
23	मौधक	63	मौडिग
24	राजन्य	64	मौन
25	जानकि	65	शाम्य
26	जालमामि	66	शायण्ड
27	त्रिगर्त	67	रालइकायन
28	दक्षिण मल्ल	68	शिवि
29	दांडिकि	69	भूद्र
30	दामिनि	70	सतियपुत
31	नामक	71	सल्वत
32	मीस	72	सनकानीत
33	नेपाल दैराज्य	73	सष्टिक
34	पुष्य मित्र	74	लिच्छिवि
35	प्रस्थल	75	वसाति
36	प्रार्जुन	76	वामरथ
37	बुली	77	विदेह
38	ब्राम्हगुप्त	78	वृक
39	ब्राम्हणक	79	वृजि
40	मंगल	80	वृष्णि

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:–

1. इकबाल डॉ नारायण 'भारतीय राजनीतिक विचार' ग्रन्थ विकास, जयपुर, 2001
2. शर्मा डॉ. हरिश्चन्द्र 'प्राचीन भारतीय सामाजिक एवं राजनैतिक विचार

एवं संस्थायें' कॉलेज बुक डिपो, नई दिल्ली, 1969
3. शरण डॉ. परमात्मा 'प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवं संस्थायें' मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 1979
4. डॉ. श्रीवास्तव एवं जोशी 'प्राचीन भारतीय राजनतिक चिन्तन एवं संस्थायें', कृष्णा प्रकाशन मंदिर, मेरठ, 1984
5. सिन्हा डॉ. विनोद एवं सिन्हा रेखा 'प्राचीन भारतीय इतिहास एवं राजनीतिक चिन्तन' राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1989
6. रस्तोगी डॉ. पी. 'प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिन्तन एवं संस्थाये' सुशील प्रकाशन, मेरठ, 1986
7. बसु डॉ. दुर्गादास 'भारत का संविधान' 10वां संस्करण Lexix Nexis Gurgaon, 2013
8. शर्मा डॉ. रामशरण 'प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवं संस्थायें' राककमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017
9. जायसवाल काशीप्रसाद 'हिन्दू राज्यतंत्र' विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2016
10. गोपाल डॉ. लल्लनजी 'प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचारधारा' विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1999

फुटनोट:-

1. इंडिया फॉर कम्यूनिज्म टू स्लेवरी-एस.ए. डांगे पृष्ठ सं.142
2. प्राचीन भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक विचार एवं संस्थाऐं डॉ. हरिश्चंद्र शर्मा
3. हिन्दू राज्य तंत्र के.पी. जायसवाल पृष्ठ सं.16
4. हिन्दू राजतंत्र डॉ. के.पी. जायवाल
5. अर्थववेद 3.4.2
6. ऋगवेद 10.173.1
7. अर्थववेद 7.12
8. हिन्दू राजतंत्र डॉ. के.पी. जायसवाल
9. प्राचीन भारत में राजनैतिक विचार एवं संस्थाऐं डॉ. परमात्मा शरण उपाध्याय
10. हिन्दू राजतंत्र डॉ. के.पी. जायसवाल पृ.सं.38
11. हिन्दू राजतंत्र डॉ. के.पी. जायसवाल, अनुवादक डॉ. रामचंद्र वर्मा

****